वर्ष 7, अंक 7

ISSN 2456-3838

पिक्चर प्लस

ज़िन्दगी का बायस्कोप

फरवरी 2024 ₹ 65

सिनेमा में युवा मुद्दे

आवारा के फुकरे

ISSN : 2456-3838
Licence No. F2 (P19) PRESS 2016

पिक्चर प्लस
वर्ष 7 अंक 7 फरवरी, 2024
(मासिक/द्विभाषिक हिंदी-अंग्रेजी)

संपादक
संजीव श्रीवास्तव

संपादन सहयोग
कल्पना कुमारी

कवर डिजाइन
ज़ाहिद मोहम्मद खान

लेआउट डिजाइन : शाश्वती

पंजीकृत पता
37/ए, गली नंबर 2,
प्रताप नगर, मयूर विहार, फेज-1
दिल्ली-110091

मूल्य- 65 रुपये (एक प्रति)
वार्षिक - 1,000 रुपये (व्यक्तिगत)
5,000 रुपये (संस्थागत)

आप डिजिटल संस्करण को नॉटनल (www.notnul.com) से ख़रीद सकते हैं।

संपर्क : 9313677771
ईमेल : pictureplus2016@gmail.com

नोट : सभी रचनाओं में व्यक्त विचारों से पत्रिका की संपादकीय नीति तथा लेखक-प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं। पत्रिका के किसी भी पक्ष से संबंधित कानूनी निपटारे का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

(सभी चित्र इंटरनेट से साभार)
सभी पद अवैतनिक

अनुक्रम

04 संपादकीय : चलती का नाम गाड़ी : सिनेमा और भारत रत्न

06 अरविन्द कुमार : राम के भक्त रहीम के बंदे, रचते रोज फरेब के फंदे

10 प्रहलाद अग्रवाल : दोस्ती: उनके जाने से मैं कितना निर्धन हो गया हूं!

12 शरद दत्त : दस्तावेज: हृषिकेश मुखर्जी : सादगी की सार्थकता

कवर स्टोरी: आवारा के फुकरे : सिनेमा में युवा मुद्दे

15 जवरीमल्ल पारख : सिनेमा में अब नहीं जलती मशाल

18 यशपाल शर्मा: युवा फिल्ममेकर्स के सवाल और चुनौती

20 चरण सिंह पथिक : आंसू का स्वाद अब भी खारा है

21 अजय ब्रह्मात्मज : संभावनाओं की मुश्किलें

24 अपूर्व कार्की : कमाल की कहानियां का दौर

26 प्रेम प्रकाश मोदी : सामंजस्य का संकट

27 हेमंत पांडे: नई मंज़िल वाले युवा

साहित्य और सिनेमा

29 डॉ. इंद्रजीत सिंह: 'रोटी' हिट 'उसकी रोटी' फ्लॉप

पिक्चर प्लस आर्काइव

31 संजीव श्रीवास्तव : संगीतकार हुस्नलाल की पत्नी निर्मला देवी की यादें

37 ताराचंद मकसाने : रवींद्र जैन: जब दीप जले आना...

इस शहर में सिनेमा हॉल था

39 विमल जोशी : आज भी शान से खड़ा है मराठा मंदिर

फिल्म संगीत

41 निर्मलेंदु: रफी साब को भारत रत्न देने में भेदभाव क्यों?

46 विनोद तिवारी : फिल्म पत्रकारिता-12: अभिनय के भ्रमजाल में कला की खोज

कथा पटकथा :

51 प्रो. रणजोध सिंह : डेथ सर्टिफिकेट

55 **Global Screen :**
Most Anticipated Movies of 2024

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक संजीव श्रीवास्तव द्वारा 37-ए, गली नं. 2, प्रताप नगर मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली–110091 से प्रकाशित। संपादक-संजीव श्रीवास्तव। चंद्रशेखर प्रिंटर्स, WZ/439/ नारायणा विलेज, नई दिल्ली-110026 से मुद्रित।

सिनेमा और भारत रत्न

देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान की सूची देखें तो भारत रत्न ज्यादातर बार राजनीतिक शख्सियतों को ही दिया गया है। इस चलन को स्थापित करने में किसी भी दौर की सरकार का कार्यकाल किसी से पीछे नहीं। लेकिन इसी सूची में अगर हम सिनेमा के क्षेत्र की बड़ी हस्तियों के नाम खोजें तो हमें गहरी निराशा होती है। भारतीय सिनेमा ने दुनिया में धाक जमा ली लेकिन भारतीय सिनेमा की गिनी चुनी जिन शख्सियतों को अब तक भारत रत्न दिया गया, उसमे देरी और प्रतिष्ठा बचाने की चिंता ज्यादा थी। सत्यजीत रे और लता मंगेशकर को इस सम्मान के योग्य बहुत देर से समझा गया। गोया कि भारत रत्न राजनीति, समाजसेवा, कला आदि विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों के लिए दिया जाता है।

कोई हैरत नहीं कि तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिए इस सूची में देश के उत्तरी भाग से अमिताभ बच्चन तो दक्षिणी भाग से रजनीकांत के नाम शामिल हो जाएं लेकिन जिनकी बदौलत हिंदुस्तानी सिनेमा ने सात समंदर पार पांच-छह दशक पहले भारतीय कला, संस्कृति, रीति रिवाज, अमन और मोहब्बत का पैगाम पहुंचाया, उन्हें भारत रत्न से सम्मानित किया जाना गंवारा नहीं समझा गया। सूची पर गौर करें तो भारतीय सिनेमा जगत में सबसे पहले इस सम्मान से नवाजे गये कलाकार थे-1988 में एमजी रामचंद्रन, फिर 1992 में सत्यजीत राय और साल 2001 में लता मंगेशकर। वहीं कला जगत में अमूल्य योगदान के लिए पं. रविशंकर, उस्ताद बिस्मिल्लाह खान और पं. भीमसेन जोशी को भी भारत रत्न दिया गया है।

हमने हाल ही में दिलीप कुमार की जन्मशती मनाई है, देवआनंद की भी जन्मशती मनाई है, राजकपूर के जन्मशती वर्ष से गुजर रहे हैं तो जल्द ही मो.रफी, मदन मोहन से लेकर गुरुदत्त तक की जन्मशती मनाने वाले हैं। क्या आपको नहीं लगता इनमें कोई भी कलाकार भारत रत्न नहीं? दिलीप कुमार, राजकपूर और देव आनंद हिंदी सिनेमा के स्वर्ण युग की ऐसी त्रिवेणी हैं जिनकी फिल्मों में डुबकी लगाकर ना जाने कितनी पीढ़ियों ने अपने सपनों को संवारा है। कल्पना कीजिये अगर देश को इनका सिनेमा न मिला होता तो हमारी जीवनशैली कैसी होती। इनका प्रभामंडल उन राजनेताओं से कभी कम नहीं रहा जिन्होंने सत्ता के सिंहासन को सुशोभित किया है। यकीनन वे भुला दिये जायेंगे लेकिन हमारे सिनेमा के स्वर्ण युग के सितारे अपनी चमक सालों साल बिखेरते रहेंगे। इनकी चमक कालातीत है। इनका मैसेज सीमातीत है। क्या हम तलत महमूद, मुकेश, मो. रफी या किशोर कुमार के योगदान को किसी से कम आंक सकते हैं? ये सभी अपने समय के वैश्विक गायक कहलाये। जरा सोचिये, ये गायक कलाकार न होते तो हम और कितना पहले स्तरीय संगीत को खो चुके होते। आज क्या इन सितारों की आत्मा नहीं हुंकार भरती होगी- ये दुनिया अगर मिल भी जाये तो क्या है...?

वास्तव में दोष महज सरकारी नीतियों का नहीं, वोट बैंक पॉलिटिक्स का नहीं बल्कि उस सोच का भी है जो सिनेमा को मौलिक कला या एक विधागत स्वीकृति देने से कतराती है। सिनेमा मतलब तीसरे दर्जे का मनोरंजन- आमतौर पर यही धारणा हावी रहती है। इसी धारणा के तहत इसके क्रिएटिव फ्रीडम पर हमले किये जाते हैं या कि इसे विधागत मान्यता नहीं दी जाती है। सिनेमा का अध्ययन विश्वविद्यालयों तक पहुंच गया। पीएचडी मिलने लगी। पाठ्यक्रमों में सिनेमा शामिल हो गया लेकिन सोच में सिनेमा कोई विधा ही नहीं। जैसे कि अन्य कलाएं।

मित्रो, सिनेमा को इसी सोच के स्तर पर एक स्वतंत्र विधा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए हम हमेशा संघर्षरत हैं। सिनेमा केवल नाच, गाना, खेल, तमाशा नहीं है। सिनेमा

आंदोलन की मुनादी है। परिवर्तन की झांकी है। एक नेता मंच पर भाषण देता है तो कोई अभिनेता उसे कहानी के जरिये समाज को सबक सिखाता है। अच्छा सिनेमा पब्लिक को उतना ही पावरफुल बनाता है जितना कि कोई आंदोलनकारी समाजसेवी। यही वजह है कि सिनेमा की इस शक्ति को हमारे कई लेखकों ने बहुत ही बारीकी से समझा और उस पर साहित्यिक दृष्टिकोण से कलम चलाई है। सिनेमा पर उसी तरह लिखा जैसे कि नाट्य रचना, काव्यग्रंथ, कहानी संग्रह या उपन्यास की समालोचना की जाती है। इस तरह उन्होंने सिनेमा की गरिमा स्थापित की। ऐसे लेखकों में निष्चय ही इकबाल मसूद, चिदानंद दासगुप्ता, सत्येंद्र शरत, अरविंद कुमार, जयप्रकाश चौकसे, ब्रजेश्वर मदान, शरद दत्त, प्रहलाद अग्रवाल, जवरीमल्ल पारख, मनमोहन चड्ढा आदि कई और नाम हैं। लेकिन आज सिनेमा फिर से तंग नजरिये का शिकार है, इसलिए बड़ी संख्या में इस मिजाज के लेखकों को सामने आना होगा। नई पीढ़ी को सीखना और सिखाना होगा। अजय ब्रह्मात्मज, दीप भट्ट, मिहिर पंड्या, इकबाल रिज़वी जैसे कई लेखक इस दिशा में सक्रियता से सार्थक काम कर रहे हैं।

2.

मित्रो, इस अंक को तैयार करते वक्त श्रद्धेय शरद दत्त जी की यादें मुझे अंदर तक भिगो रही हैं। पिछला साल यही फरवरी का वो मनहूस महीना था, जब काल ने उनको हमसे छीन लिया। उनकी लेखनी, उनकी यादें हमारे भीतर ऊर्जा प्रदान करती रहती है। पिक्चर प्लस को दोबारा शुरू करने के लिए वो लंबे समय से उत्साहित कर रहे थे। आखिरकार उनकी इच्छाशक्ति सफल हुई और अगस्त, 2022 से उनके प्रधान संपादकत्व में पिक्चर प्लस का दोबारा प्रकाशन संभव हुआ। लेकिन कुछ ही महीनों के बाद उनका अस्वस्थ हो जाने और 12 फरवरी में दुनिया को अलविदा कह देने पर जैसे हम बीच सड़क पर खाली हाथ खड़े हो गये। लेकिन आज मैं सोचता हूं उनके नहीं रहने पर भी पिक्चर प्लस अगर नियमित प्रकाशित होती रही तो केवल इस वजह से कि उनकी यादों में अदभुत् ऊर्जा शक्ति है। उनके विचार और मार्गदर्शन हमारे अंदर सकारात्मकता के जोश भरते हैं। उनके साथी लेखकों में भी मैं उन्हीं की जैसी ऊर्जा महसूस करता हूं। उनकी पहली पुण्यतिथि पर पिक्चर प्लस उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। सादर नमन।

शरद दत्त को सादर नमन

(26 नवंबर 1946 - 12 फरवरी 2023)

3.

मित्रो, पिक्चर प्लस का यह अंक सिनेमा में युवा मुद्दों पर केंद है। यों किसी भी फिल्म की कहानी हमेशा युवा केंद्रित होती है लेकिन जब हम युवा मुद्दे कहते हैं तो इसका आशय युवाओं की समस्याओं से जुड़े मुद्दे हैं। इस लिहाज से हिंदी में अनेक फिल्में बनी हैं। 'आवारा' से लेकर 'मेरे अपने' या 'दीवार' से लेकर, 'फुकरे' और 'एनिमल' या '12वीं फेल' तक युवा मुद्दे विभिन्न रूपों में नजर आते हैं। लेकिन हिंदी सिनेमा में युवा मुद्दों का स्वर और स्वरूप अब किस प्रकार का रह गया? आखिर इसकी वजह क्या है? अब 'सत्यकाम' या 'तेजाब' क्यों नहीं बन सकती? इन्हीं सवालों के आलोक में यह विचार करना भी जरूरी हो जाता है कि आज के दौर में जिन युवाओं की प्रतिभा से हमारा आज का सिनेमा जिस रूप में नजर आ रहा है, उन कलाकारों और कला उद्यमिता के आगे आखिर क्या-क्या समस्यायें और कमियां हैं। इस संबंध में हमें जितने लेखकों और कलाकारों के लेख व विचार आदि प्राप्त हो सके- उन सबको आभार।

अंक कैसा लगा, लिखियेगा। अब हम जुटते हैं अगले अंक की तैयारी में।

आपका संपादक

संजीव श्रीवास्तव

राम के भक्त रहीम के बंदे, रचते रोज फरेब के फंदे

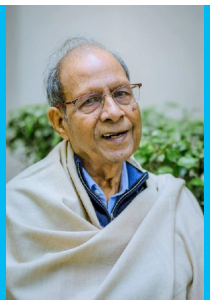

कवि प्रदीप का परिचय देने के लिए यह फ़ोटो ही काफ़ी है और काफ़ी हैं उस गीत के बोल जो लता मंगेशकर ने सन् 1963 के गणतंत्र दिवस पर पंडित नेहरू की उपस्थिति में रामलीला मैदान में गाया। भारत-चीन युद्ध में शहीद भारतीय सैनिकों की समर्पित इस गीत के बोल हैं—

ऐ मेरे वतन के लोगों, ज़रा आंख में भर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उन की, ज़रा याद करो क़ुरबानी

1942-43-44 के दिन। मैं बारह-तेरह-चौदह साल का था। अगस्त 1942 में गांधी जी ने अंग्रेजों भारत छोड़ो नारा दिया था। मेरी उम्र के किशोर और नौजवान गाते न थकते थे दो गीत:

1) 'चल चल रे नौजवान चलो संग चलें हम, दूर तेरा गांव और थके पांव',

2) आज हिमालय की चोटी से फिर हम ने ललकारा है दूर हटो ऐ दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है'।

हम नहीं जानते थे ये लिखने वाला कौन है, किस फ़िल्म के हैं, इससे हमें कोई मतलब नहीं था। पहला हम में देशभक्ति की भावना जगाता था, दूसरा हिम्मत से आगे बढ़ते रहने को प्रेरित करता था।

सन् 1954; देश आज़ाद हुए सात साल हो गए थे। ऊपर वाले गीतों का कवि लेकर आया इतिहास का पुनर्कथन–

'दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल
साबरमति के संत तू ने कर दिया कमाल...'

इनके रचयिता कवि प्रदीप का जन्म उज्जैन के निकट बड़गांव के उदीच्य ब्राह्मण परिवार में 6 फ़रवरी 1915 को हुआ था। पूरा नाम था रामचंद्र नारायणजी द्विवेदी। जबसे पढ़ना लिखना शुरू किया तभी से कविता जागी। लखनऊ विश्वविद्यालय में बीए की पढ़ाई करते-करते कवि सम्मेलनों में पढ़ने लगे। आवाज़ बुलंद थी। कविता पाठ की शैली अनोखी थी। श्रोता मुग्ध हो जाते। तभी उन्होंने अपना उपनाम 'प्रदीप' बना लिया। 1939 में परीक्षा पास की। अध्यापक के पद के लिए आवेदन भेज दिया। उन्हीं दिनों बंबई में कवि सम्मेलन में कविता पाठ करने गए।

बंबई वाले कवि सम्मेलन में ऐतिहासिक बांबे टाकीज़ के संस्थापक संचालक हिमांशु रॉय ने सुना तो 1939 की सुपरहिट 'कंगन' के गीत लिखने के लिए चुन लिया। यहीं यह बताना ज़रूरी है

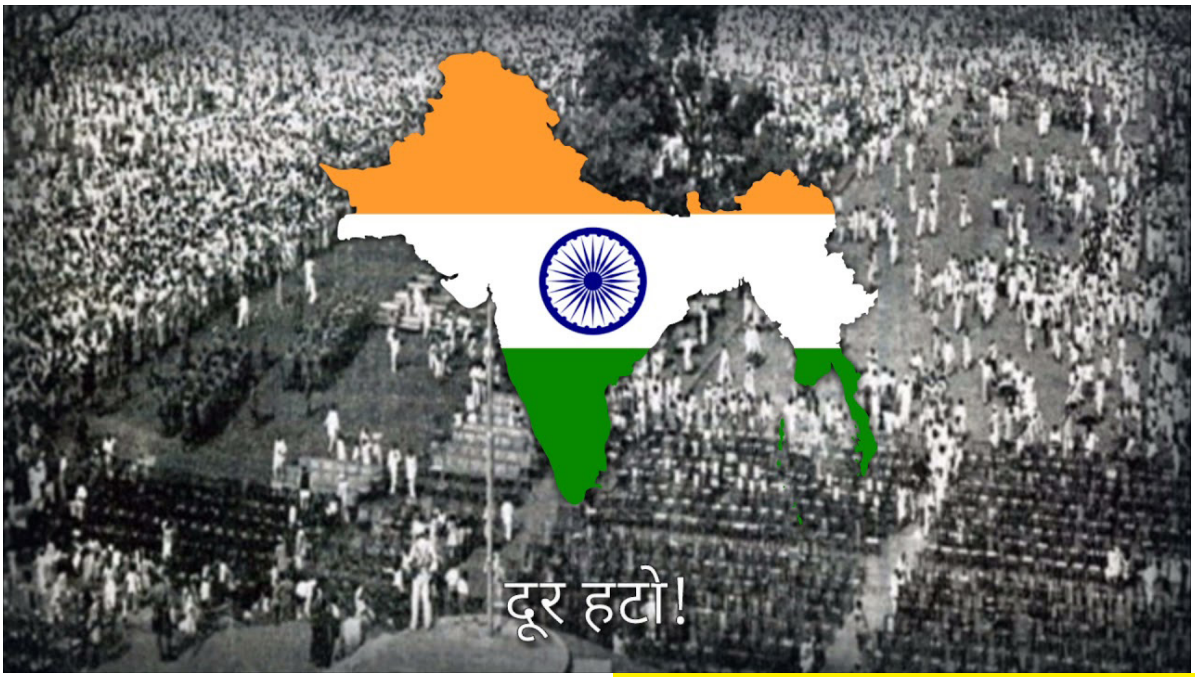

कि लखनऊ का प्रदीप कवि प्रदीप कैसे बन गया। बांबे टाकीज़ परिवार में अभिनेता प्रदीप पहले से ही थे। दोनों में अंतर करने के लिए प्रदीप बन गए कवि प्रदीप।

निर्देशक थे फ्रांज़ औस्टन, मुख्य कलाकार थे अशोक कुमार, लीला चिटणीस, मुबारक, नाना पल्सीकर, प्रतिमा। एक कवि और गांव की गोरी राधा की प्रेम कहानी। इस में प्रदीप ने कुछ गीत स्वयं गाए थे, कुछ अन्य ने। अशोक कुमार और लीला चिटणीस ने गाया था प्रदीप का गीत 'राधा राधा बोल', प्रदीप ने गाए थे कबीर के पद 'मारे राम जिलावे राम', 'भाई रे कबीर सुन', और लीला चिटणीस के साथ अपना लिखा गीत 'मैं तो आरती उतारूं राधे श्याम की', लीला चिटणीस ने गाए थे प्रदीप लिखित गीत 'सूनी पड़ी रे सितार मीरा के जीवन की' और 'हवा तुम धीरे बहो'। एन.आर. आचार्य-निर्देशित कवि प्रदीप के गीतों वाली 'बंधन' की कहानी थी गांव के ज़मींदार की बेटी बीना (लीला चिटणीस) और हैडमास्टर निर्मल (अशोक कुमार) के प्रेम की और जमींदार की गठिया के इलाज के लिए आए खलनायक लंदनपलट डॉक्टर सुरेश (शाहनवाज़) के षड्यंत्रों की। अकथित सामयिक संदेश था अंगरेजियत का विरोध।

'बंधन' के पोस्टर में बड़ी शान से लिखा गया था "ग्यारह गीत"। सरस्वती देवी के संगीत निर्देशन में सभी गीत कवि प्रदीप ने लिखे थे। सर्वाधिक लोकप्रिय और आज़ादी के दीवानों की ज़बान पर चढा गीत था:

चल चल रे नौजवान, चलो संग चलें हम,
दूर तेरा गांव और थके पांव,

'तुम ना किसी के आगे झुकना जरमन हो या जापानी' शब्दों के आधार पर 'दूर हटो ऐ दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है' गीत के बारे में बांबे टॉकीज का कहना था कि यह गीत वार अफर्ट में हमारा योगदान है। पर गीतकार, संगीतकार, फ़िल्म निर्माता और निर्देशक जानते थे कि जनता तक गीत असली देशभक्तिपूर्ण संदेश दर्शकों तक पहुंच जाएगा और पहुंचा भी।

फिर भी राहगीर तुम क्यों नहीं अधीर।

इसके बाद उन्होंने बांबे टाकीज़ के लिए 'पुनर्मिलन' (1940), 'नया संसार' (1941), 'अनजान' (1943) और अंतिम 'क़िस्मत' (1943) के गीत लिखे।

क़िस्मत (1943)

कलकत्ते में लगातार तीन साल चलने वाली अब तक की सफलतम फिल्म क़िस्मत के निर्देशक थे ज्ञान मुखर्जी, कथाकार थे ज्ञान मुखर्जी और आग़ाजानी कश्मीरी। हिमांशु रॉय के देहांत के बाद बांबे टॉकीज़ के स्वामित्व पर संस्थापिका देविका रानी और शशधर मुखर्जी के मतभेद के कारण कंपनी ही बंद हो गई थी।

मुख्य कलाकार थे अशोक कुमार (हिंदी फ़िल्मों पहला डबल रोल), मुमताज शांति, शाहनवाज और महमूद। पहली बार